माननीय न्यायाधीश श्री आर. एस. नरूला, सी. जे. के समक्ष

चंदू लाल, - याचिककर्ता

बनाम

कालिया और गोरिया, - उत्तरदाता

1973 का सिविल संशोधन संख्या **849**

6 जनवरी, **1976**

पंजाब किरायेदारी अधिनियम (1887 का XVI) - धारा 45, 50, 50-ए और 77 (3) (एफ) और (जी) - पेप्सू किरायेदारी और कृषि भूमि अधिनियम (1955 का XIII) - धारा 39 और 47 - किरायेदार को धारा 45 (5) के तहत बाहर निकालने का आदेश दिया गया है - ऐसे किरायेदार द्वारा सिविल मुकदमा जो निष्कासन के लिए अपनी देयता का विरोध करता है - सिविल कोर्ट का अधिकार क्षेत्र - क्या प्रतिबंधित है।

अभिनिर्धारित किया गया कि पंजाब किरायेदारी अधिनियम, 1887 की धारा 50-ए ने बार को केवल एक किरायेदार के मुकदमे के संबंध में सिविल कोर्ट के अधिकार क्षेत्र तक सीमित कर दिया है, जिसे अधिनियम की धारा 46 की उप-धारा (6) के तहत निष्कासन का आदेश दिया गया है, न कि एक किरायेदार के जिसे धारा 45 की उप-धारा (5) के तहत या कानून के किसी अन्य प्रावधान के तहत बाहर निकालने का निर्देश दिया गया है। सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के बहिष्करण का आसानी से अनुमान नहीं लगाया जाना चाहिए और इस तरह की रोक वाले सभी प्रावधानों को सख्ती से माना जाना चाहिए। अधिनियम की धारा 45 की उप-धारा (6) के तहत निष्कासन के संबंध में मुकदमे पर रोक को धारा 45 की उप-धारा (5) के तहत पारित आदेश के तहत निष्कासन के दायित्व पर सवाल उठाने वाले मुकदमे तक नहीं बढ़ाया जा सकता है। एक मुकदमा जिसमें किरायेदार एक घोषणा का दावा करता है कि वह भूमि के कब्जे में है, अधिनियम की धारा 77 (3) के खंड (जी) के तहत नहीं आता है और इसे सिविल कोर्ट के अधिकार क्षेत्र से बाहर नहीं किया गया है। खंड (एफ) द्वारा बनाए गए बार का उद्देश्य यह है कि एक किरायेदार दो महीने की अवधि की समाप्ति के बाद राजस्व अदालत में जाने के बजाय राहत का दावा करने के लिए सिविल कोर्ट में नहीं आ सकता है, जिसे वह दो महीने की अवधि के भीतर अधिनियम की धारा 45 (3) के तहत दावा कर सकता था। चूंकि किरायेदार के मालिकाना अधिकारों की घोषणा के बारे में राहत और यह कि वह भूमि के कब्जे में है और मकान मालिक को उसे बाहर निकालने से रोकता है, संभवतः अधिनियम की धारा 45 (3) द्वारा परिकल्पित मुकदमे का विषय नहीं बन सकता है, एक मुकदमा जिसमें ऐसी राहत का दावा किया जाता है, धारा 77 (3) के खंड (एफ) के भीतर नहीं आता है। पेप्सू किरायेदारी और कृषि भूमि अधिनियम, 1955 की धारा 47 और धारा 39 के तहत भी इस तरह के मुकदमे पर रोक नहीं है क्योंकि यह पेप्सू अधिनियम की धारा 47 की उप-धारा (1) या उप-धारा (2) के भीतर नहीं आता है। इसलिए, इस तरह के मुकदमे की सुनवाई करने के लिए एक सिविल कोर्ट का अधिकार क्षेत्र कानून के किसी भी प्रावधान द्वारा प्रतिबंधित नहीं है।

(पैरा 5, 10, 11, 12 और 13)).

सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के तहत नारनौल के अतिरिक्त जिला न्यायाधीश श्री शिव दास त्यागी के दिनांक 25 मई, 1973 के आदेश में संशोधन के लिए याचिका दायर की गई है, जिसमें 5 अक्टूबर , 1972 को नारनौल के प्रथम श्रेणी के उप-न्यायाधीश श्री एनके जैन के 11 जून 1973 के आदेश को उलट दिया गया है ।

याचिकाकर्ता की ओर से एडवोकेट एस. गुप्ता और एडवोकेट जसवंत जैन *ने पैरवी की।*

ए. के. गोयल, अधिवक्ता, *उत्तरदाताओं के लिए।*

निर्णय

न्यायाधीश आर. एस. नरूला, -

1. श्री शिवचरण दास त्यागी के न्यायालय के आदेश की समीक्षा के लिए इस याचिका में एकमात्र प्रश्न का उत्तर दिया जाना है। 25 मई, 1973 को नारनौल के अतिरिक्त जिला न्यायाधीश ने पूछा कि क्या दीवानी न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को वादी-प्रतिवादियों द्वारा दायर घोषणा और स्थायी निषेधाज्ञा के लिए मुकदमे की सुनवाई करने और निर्णय लेने से रोक दिया गया है। यह प्रश्न उत्पन्न हुआ है:-

2. राम धन के बेटे कालिया और गोरिया, वादी-प्रतिवादी, निश्चित रूप से प्रतिवादी-याचिकाकर्ता चंदू लाई के किरायेदार थे। वे उपज किराए के भुगतान पर प्रतिवादी की जमीन पर खेती करते थे। यह दोनों पक्षों का सामान्य मामला भी है कि निष्कासन के आदेश के पारित होने के बाद, उन्हें किरायेदारी होल्डिंग से कभी बेदखल नहीं किया गया था। 12 नवंबर, 1968 को, प्रतिवादी-याचिकाकर्ता ने पंजाब किरायेदारी अधिनियम, 1887 (इसके बाद किरायेदारी अधिनियम के रूप में संदर्भित) की धारा 43 के तहत सहायक कलेक्टर (राजस्व अधिकारी) को उस अधिनियम की धारा 42 के खंड (बी) में परिकल्पित निष्कासन नोटिस के वादी-उत्तरदाताओं पर सेवा के लिए एक आवेदन दिया। इसके खंड (क) और खंड (ख) में विनिदष्ट खंड (ख) में लिखा है: -

"(b) जब किरायेदार को अधिभोग का अधिकार नहीं है और वह अनुबंध या डिक्री या सक्षम प्राधिकारी के आदेश के तहत एक निश्चित अवधि के लिए धारण नहीं करता है।

वादी-प्रतिवादियों ने वाद पत्र में अधिभोग के किसी भी अधिकार का दावा नहीं किया। न ही उनका किरायेदारी किसी सक्षम प्राधिकारी के अनुबंध या डिक्री या आदेश के तहत एक निश्चित अवधि के लिए किरायेदारी थी। किरायेदारी अधिनियम की धारा 43 में निम्नानुसार प्रावधान है : —

"ऐसे किसी भी मामले में, जैसा कि अंतिम पूर्वगामी खंड के खंड (ए) या खंड (बी) में उल्लिखित है, मकान मालिक पूर्व खंड में उल्लिखित मामले में किरायेदार को निकालने के लिए या बाद के खंड में उल्लिखित मामले में निष्कासन की सूचना के किरायेदार पर सेवा के लिए राजस्व-अधिकारी को आवेदन कर सकता है।"

प्रतिवादी-याचिकाकर्ता के आवेदन की प्राप्ति पर, राजस्व अधिकारी ने किरायेदारी अधिनियम की धारा 45 की उप-धारा (1) के तहत किरायेदारों को निष्कासन का नोटिस दिया, जो निम्नलिखित शर्तों में है : —

"धारा 42 के खंड (बी) में उल्लिखित ऐसे किसी भी मामले में मकान मालिक का आवेदन प्राप्त होने पर, राजस्व अधिकारी, यदि आवेदन क्रम में है और इसके सामने आपत्ति के लिए खुला नहीं है, तो किरायेदार को निष्कासन की सूचना देगा।."

किरायेदारी अधिनियम की धारा 15 (1) के तहत नोटिस जारी करने और सेवा देने से वादी-प्रतिवादियों द्वारा इनकार नहीं किया

गया है। वाद के पैरा 3 में दिए गए अनुसार उनका मामला यह था कि उक्त नोटिस पर राजस्व अधिकारी की अदालत के हस्ताक्षर और मुहर नहीं थी और उक्त नोटिस न तो कानूनी था और न ही अधिकार के साथ था। हालांकि, वादी उत्तरदाताओं ने उक्त नोटिस (प्रदर्शनी पी /10) के जवाब में राजस्व अधिकारी के समक्ष उपस्थित हुए। राजस्व न्यायालय का दिनांक 21 नवम्बर, 1968 का आदेश (प्रदर्शनी पी/9) इस तथ्य को स्थापित करता है।

3. किरायेदारी अधिनियम की धारा 45 की उप-धारा (3) में *अन्य बातों के साथ-साथ* यह प्रावधान है कि उप-धारा (1) के तहत नोटिस जारी करने पर यदि किरायेदार निष्कासन के अपने दायित्व का विरोध करना चाहता है, तो उसे नोटिस की सेवा की तारीख से दो महीने के भीतर राजस्व न्यायालय में उस उद्देश्य के लिए मुकदमा दायर करना होगा। जाहिर है, वादी-प्रतिवादियों द्वारा उपरोक्त नोटिस की सेवा के बावजूद ऐसा कोई मुकदमा दायर नहीं किया गया था। ऐसा कोई मुकदमा दायर नहीं किया गया है, प्रतिवादी-याचिकाकर्ता ने 20 मार्च, 1969 को राजस्व अधिकारी को किरायेदारी अधिनियम की धारा 45 की उप-धारा (5) के तहत वादी-प्रतिवादियों के खिलाफ निष्कासन का आदेश पारित करने के लिए एक आवेदन दिया। उस आवेदन के नोटिस का दावा प्रतिवादी-याचिकाकर्ता द्वारा वादी-प्रतिवादियों को विधिवत रूप से दिया गया है। वादी-प्रतिवादियों का मामला यह है कि उस नोटिस की सेवा की झूठी रिपोर्ट) प्रतिवादी-याचिकाकर्ता द्वारा सुरक्षित की गई थी और वास्तव में उन्हें ऐसा कोई नोटिस नहीं दिया गया था। उस नोटिस की सेवा की रिपोर्ट के आधार पर, 13 जून, 1969 को वादी-प्रतिवादियों के खिलाफ निष्कासन का एकपक्षीय आदेश पारित किया गया था। निष्कासन के लिए उपर्युक्त एकपक्षीय आदेश के निष्पादन में वादी-प्रतिवादियों को बेदखल करने का आदेश 14 जून, 1969 को जारी किया गया था। उस आदेश के निष्पादन में, कब्जे के वारंट पर रिपोर्ट के अनुसार, वादी-उत्तरदाताओं को 15 जून, 1969 को विवाद में भूमि से बेदखल कर दिया गया था। हालांकि, वादी-प्रतिवादियों का दावा यह है कि रिपोर्ट काल्पनिक है और वास्तव में वादी को कभी बेदखल नहीं किया गया था और अभी भी प्रतिवादी-याचिकाकर्ता के किरायेदारों के रूप में भूमि के कब्जे पर खेती जारी है। मुकदमे के इतिहास को पूरा करने के लिए, यह आगे देखा जा सकता है कि सहायक कलेक्टर द्वारा पारित निष्कासन के आदेश के खिलाफ वादी-प्रतिवादियों द्वारा पसंद की गई अपील को कलेक्टर द्वारा 29 मार्च, 1959 को खारिज कर दिया गया था। वादी-प्रतिवादियों के वकील का कहना है कि उक्त अपील को समय द्वारा रोक के रूप में खारिज कर दिया गया था।

4. यह उपर्युक्त परिस्थितियों में था कि 26 अप्रैल, 1972 को वादी-प्रतिवादियों ने मुकदमा दायर किया: –

   i. इस आशय की घोषणा के लिए कि वे कुछ वार्षिक उपज किराए के भुगतान पर किरायेदार के रूप में पिछले 50 वर्षों से लगातार भूमि पर कब्जा कर रहे हैं:

   ii. एक घोषणा के लिए कि मालिकाना अधिकार उन्हें प्राप्त हुए हैं ;

   iii. यह घोषणा करने के लिए कि उन्हें नारनौल के सहायक कलेक्टर प्रथम श्रेणी द्वारा पारित 13 जून, 1969 के अवैध आदेश के अनुसरण में कभी भी बेदखल नहीं किया गया था। न ही उन्हें सहायक कलेक्टर प्रथम श्रेणी, नारनौल के उस आदेश से निकाला जा सकता है, और वे निकाले जाने के लिए उत्तरदायी नहीं हैं; और

iv. प्रतिवादी याचिकाकर्ता को उस आदेश के अनुसरण में या कानून के उचित समय को छोड़कर किसी भी अन्य तरीके से उन्हें बाहर निकालने से रोकने के लिए एक स्थायी निषेधाज्ञा की आवश्यकता है,

5. मुकदमे को प्रतिवादी द्वारा चुनौती दी गई थी। अपने लिखित बयान के पैरा 10 में, प्रतिवादी ने यह दलील दी कि सिविल कोर्ट के अधिकार क्षेत्र पर रोक लगाई गई थी। उस दलील ने इस आशय के मुद्दे संख्या 4 को जन्म दिया -

"क्या इस न्यायालय के अधिकार क्षेत्र पर रोक है ?"

5 अक्टूबर, 1972 के अपने आदेश द्वारा, श्री एनके जैन, अधीनस्थ न्यायाधीश प्रथम श्रेणी, नारनौल की अदालत ने प्रतिवादी के पक्ष में उस मुद्दे पर फैसला सुनाया और कहा कि सिविल कोर्ट इस मुद्दे पर आगे बढ़ने के लिए सक्षम नहीं है और इसका अधिकार क्षेत्र विशेष रूप से "पंजाब और पेप्सू अधिनियमों के प्रावधानों" द्वारा प्रतिबंधित है। इसलिए, उन्होंने निर्देश दिया कि किरायेदारी अधिनियम की धारा 77 की उप-धारा (3) के पहले परंतुक में आवश्यक विवरणों का समर्थन करने के बाद, इस वाद का वाद वादी-प्रतिवादियों को उचित न्यायालय में प्रस्तुत करने के लिए वापस कर दिया जाए, यानी कलेक्टर को। उस आदेश के खिलाफ वादी-प्रतिवादियों की अपील को अतिरिक्त जिला न्यायाधीश नारनौल की अदालत के फैसले द्वारा अनुमति दी गई थी, जो अब पुनरीक्षण के अधीन है। एकमात्र बिंदु, जिस पर विद्वान अतिरिक्त जिला न्यायाधीश ने ट्रायल कोर्ट के आदेश को उलट दिया, वह यह है कि किरायेदारी अधिनियम की धारा 77 में ऐसे मामले पर कोई लागू नहीं होता है जहां मकान मालिक और किरायेदार के संबंध को पार्टियों के बीच स्वीकार नहीं किया जाता है। जहां तक प्रतिवादी-याचिकाकर्ता के मामले का संबंध है कि वादी-प्रतिवादियों की किरायेदारी निष्कासन के आदेश के पारित होने के साथ समाप्त हो गई थी, तो निचली अपीलीय अदालत के अनुसार, यह मकान मालिक और किरायेदार के रिश्ते से इनकार करने के समान था, इस प्रकार किरायेदारी अधिनियम की धारा 77 के आवेदन को खारिज कर दिया गया।

6. श्री एस.बी.जी.एस. गुप्ता, जिन्होंने इस मामले में विस्तार से बहस की है, ने मुझे समझाने की कोशिश की कि वादी-प्रतिवादियों का मुकदमा एक या दूसरे या निम्नलिखित सभी प्रावधानों के तहत निषिद्ध है: —

i. किरायेदारी अधिनियम की धारा 50 और 50-ए;

ii. किरायेदारी अधिनियम के दूसरे समूह की धारा 77 (3) (एफ) और (जी); और

iii. पेप्सू किरायेदारी और कृषि भूमि अधिनियम, 1955 की धारा 39 के साथ धारा 47 को पढ़ा जाता है।

किरायेदारी अधिनियम की धारा 50 और 50 (ए) को इस स्तर पर उद्धृत किया जा सकता **है: –**

"50. निम्नलिखित में से किसी भी मामले में, अर्थात् -

1. **यदि किसी किरायेदार को उसकी किरायेदारी या उसके किसी हिस्से की सहमति के बिना बेदखल कर दिया गया है (किसी डिक्री के निष्पादन या धारा 44 या धारा 45 के तहत आदेश के अनुसरण में),**

2. **यदि कोई किरायेदार, जिसने धारा 45 की धारा जेजे के तहत मुकदमा दायर नहीं किया है, को उस धारा के तहत एक आदेश के अनुसरण में उसकी किरायेदारी या उसके किसी भी हिस्से से निकाल**

दिया गया है, तो वह अपने दायित्व से इनकार करता है। किरायेदार, अपने कब्जे या निष्कासन की तारीख से एक वर्ष के भीतर, कब्जे या अधिभोग की वसूली या मुआवजे के लिए या दोनों के लिए मुकदमा दायर कर सकता है।

7. 50-A. कोई भी व्यक्ति जिसकी निष्कासन का आदेश राजस्व न्यायालय द्वारा धारा 45, उपधारा (6) के तहत दिया गया है, या जिसका मुकदमा धारा 50 के तहत खारिज कर दिया गया है, वह निष्कासन के अपने दायित्व को चुनौती देने के लिए सिविल कोर्ट में मुकदमा दायर नहीं कर सकता है, या कब्जा या अधिभोग अधिकारों की वसूली कर सकता है, या मुआवजा वसूल सकता है।''

8. किरायेदारी अधिनियम की धारा 50-ए की सरल भाषा से यह देखा जाएगा कि उस प्रावधान के तहत केवल दो प्रकार के मुकदमों पर रोक है, अर्थात् (i) एक ऐसे व्यक्ति के हाथों मुकदमा जिसे धारा 45 की उप-धारा (6) के तहत निष्कासन का आदेश दिया गया है और (ii) एक किरायेदार का मुकदमा जिसे धारा 50 के तहत खारिज कर दिया गया है। यह दोनों पक्षों का स्वीकार किया गया मामला है कि किरायेदार ने धारा 50 के तहत कोई मुकदमा दायर नहीं किया है, केवल इस बात पर विचार किया जाना चाहिए कि वादी-प्रतिवादियों का मुकदमा उस व्यक्ति का मुकदमा है या नहीं, जिसे किरायेदारी अधिनियम की धारा 45 की उप-धारा (6) के तहत राजस्व न्यायालय द्वारा निष्कासन का आदेश दिया गया है। धारा 45 की उपधारा (3) के तहत उस धारा की उप-धारा (1) के तहत मकान मालिक के कहने पर उसे जारी किए गए नोटिस के सेवा के दो महीने के भीतर उस पर मुकदमा दायर किया जाता है। इस मामले में किरायेदार ने ऐसा कोई मुकदमा दायर नहीं किया था। इसलिए इस मामले में इस तरह के मुकदमे को खारिज करने का कोई सवाल ही नहीं उठता।. किरायेदार ने इस तरह का मुकदमा दायर नहीं किया है, उस पर नोटिस जारी किया गया है, मकान मालिक, जैसा कि पहले ही कहा गया है, धारा 45 की उप-धारा (5) के तहत उसे निकालने के लिए आवेदन किया और आदेश प्राप्त किया। यदि धारा 50-ए में कहा गया था कि कोई भी व्यक्ति जिसे धारा 45 के तहत राजस्व न्यायालय द्वारा निष्कासन का आदेश दिया गया है, वह निष्कासन के अपने दायित्व को चुनौती देने के लिए सिविल कोर्ट में मुकदमा दायर नहीं कर सकता है, तो ट्रायल कोर्ट में अधिकार क्षेत्र की कमी के बारे में वादी-प्रतिवादियों की याचिका निस्संदेह सफल होती, लेकिन धारा 50-ए, जैसा कि यह है, बार को केवल एक किरायेदार के मुकदमे के संबंध में सिविल कोर्ट के अधिकार क्षेत्र तक सीमित कर दिया गया है, जिसे धारा 45 की उपधारा (6) के तहत निष्कासन का आदेश दिया गया है, न कि एक किरायेदार के जिसे धारा 45 की उप-धारा (5) के तहत या कानून के किसी अन्य प्रावधान के तहत बाहर निकालने का निर्देश दिया गया है। सिविल कोर्ट के अधिकार क्षेत्र के बहिष्करण का आसानी से अनुमान नहीं लगाया जाना चाहिए। सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र पर रोक वाले प्रावधानों का कड़ाई से अर्थ लगाया जाना चाहिए। (इस संबंध में उच्चतम न्यायालय के निर्णय का संदर्भ दिया जा सकता है। ***धुलाभाई आदि। बहुत। मध्य प्रदेश राज्य और दूसरा***।[1]धारा 45 की उप-धारा (6) के तहत निष्कासन के संबंध में मुकदमे पर रोक को धारा 45 की उप-धारा (5) के तहत पारित आदेश के तहत निष्कासन के दायित्व पर सवाल उठाने वाले मुकदमे तक नहीं बढ़ाया जा सकता है। इसलिए, मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि किरायेदारी अधिनियम की धारा 50-ए प्रतिवादियों द्वारा दायर वर्तमान मुकदमे पर रोक नहीं लगाती है।

9. यह मुझे किरायेदारी अधिनियम की धारा (3) के तहत दावा किए गए बार में ले जाता है। यह प्रावधान निम्नानुसार है -

---

[1] ए.आई.आर. 1969 सुप्रीम कोर्ट 78.

'राजस्व न्यायालयों द्वारा निम्नलिखित वाद को की स्थापना और सुनवाई और निर्धारण किया जाएगा और कोई अन्य न्यायालय किसी ऐसे विवाद या मामले का संज्ञान नहीं लेगा जिसके संबंध में ऐसा कोई वाद स्थापित किया जा सकता है। : —

बशर्ते कि :—

(1) जहां सिविल न्यायालय द्वारा संज्ञेय और स्थापित किए गए किसी मुकदमे में किसी ऐसे मामले पर निर्णय लेना आवश्यक हो जाता है जिसे इस उप-धारा के तहत केवल राजस्व न्यायालय द्वारा सुना और निर्धारित किया जा सकता है, सिविल न्यायालय निर्णय के लिए मामले की प्रकृति और आदेश VII, नियम 10 द्वारा आवश्यक विवरणों का समर्थन करेगा। सिविल प्रक्रिया संहिता, और कलेक्टर को प्रस्तुति के लिए वाद वापस करें ;

(2) कलेक्टर के समक्ष प्रस्तुत किए जा रहे वाद पर कलेक्टर उस वाद की सुनवाई और निर्धारण करने के लिए आगे बढ़ेगा जहां उसका मूल्य 1,000 रुपये से अधिक है या इसमें शामिल मामला पंजाब किरायेदारी अधिनियम, 1887 की धारा 77 (3), प्रथम समूह में उल्लिखित प्रकृति का है, और अन्य मामलों में मुकदमे को निर्णय के लिए प्रथम श्रेणी के सहायक कलेक्टर को भेज सकता है।.

FIRST GROUP

(a) * ' “ # * $ # ■ * . ■ .

(b) *

(c) * J * . ■ . * * * *

SECOND GROUP -

(d) * * ♦ * * * v

(e) * * : f * * ♦

(f) धारा 45 के तहत किरायेदार द्वारा मुकदमा, जब निष्कासन का नोटिस दिया गया हो तो निष्कासन के दायित्व का विरोध किया जा सकता है ;

(g) धारा 50 के तहत किरायेदार द्वारा कब्जा या अधिभोग की वसूली के लिए, या मुआवजे के लिए या दोनों के लिए मुकदमा;

(h) * * * *

(i) * * * * * *

(j) * * * * * *

(k) * * * * * *

(1) * * * * * *

(m) * * *

(n) * * * *

(p) * * * * * *

10. प्रतिवादी-याचिकाकर्ता द्वारा दावा किए गए वर्तमान मुकदमे के लिए विशिष्ट रोक के दायरे पर विचार करने से पहले, मैं उस एकमात्र बिंदु पर विचार कर सकता हूं जिस पर विद्वान अतिरिक्त जिला न्यायाधीश ने ट्रायल कोर्ट के फैसले को उलट दिया है। कानून के प्रस्ताव के साथ कोई झगड़ा नहीं है कि धारा 77 (3) केवल ऐसे मुकदमों पर रोक लगाती है जिसमें पक्षों के बीच मकान मालिक और किरायेदार के रिश्ते के बारे में कोई विवाद नहीं है। रिलायंस को हरबंस सिंह, ए.सी.जे. और संधावालिया, जे इन खजान सिंह और एक अन्य बनाम भारत के फैसलों पर नीचे दिए गए न्यायालय द्वारा इस प्रस्ताव के लिए रखा गया था । *दलीप सिंह और एक अन्य*, [2] सी जी सूरी के, जे राजा राम में *और एक अन्य* वी। *रघबीर सिंह और अन्य*, [3] पी.सी. पंडित के, जे. *इन दलजीत सिंह और एक अन्य* वी. *सुप्रीम कोर्ट के* [4]नंद राम और अन्य ने *सोलोन के श्री राजा दुर्गा सिंह मामले में फैसला सुनाया*। *थोलू और अन्य, और* [5] पी. सी. पंडित और गोपाल सिंह, जे.जे. *जसवंत राय और एक अन्य* वी. *भगवान दास और एक और*।[6]खजान सिंह और एक अन्य *(सुप्रा) के मामले में दायर मुकदमा* इस घोषणा के लिए था कि सहायक कलेक्टर का आदेश जो प्रतिवादियों को पंजाब भूमि कार्यकाल अधिनियम की धारा 18 के तहत वादी की जमीन खरीदने की अनुमति देता है, अमान्य, अधिकार क्षेत्र के बिना और अप्रभावी है। प्रतिवादियों ने धारा 77 की रोक के कारण मुकदमे पर विचार करने के लिए सिविल कोर्ट के अधिकार क्षेत्र पर विवाद किया. चूंकि मकान मालिक और किरायेदार का रिश्ता प्रतिवादियों द्वारा खरीदी गई भूमि द्वारा मुकदमा दायर करने से पहले समाप्त हो गया था, इसलिए यह माना गया था कि धारा 77 मुकदमे के लिए एक रोक नहीं थी। *राजा राम और एक अन्य (सुप्रा) के मामले* में, निष्कासन कार्यवाही में किरायेदार राजाराम (सूरी, जे द्वारा सुनी गई रिट याचिका में याचिकाकर्ता) का बचाव यह था कि उसके मृत पिता ने रघबीर सिंह प्रतिवादी नंबर 1 के नाम पर अदालत की नीलामी में बेनामी जमीन खरीदी थी, और यह कि रिट-याचिकाकर्ता को पट्टेदार के रूप में कब्जे में दिखाते हुए पार्टियों के बीच एक काल्पनिक पट्टा-विलेख निष्पादित किया गया था। यह स्वीकार नहीं किया गया था कि राजा राम कभी रघबीर सिंह के किरायेदार थे, या यह कि पहले से मौजूद किरायेदारी निष्कासन के आदेश से समाप्त हो गई थी। *दलजीत सिंह* और एक अन्य (सुप्रा) के मामले में, विद्वान न्यायाधीश ने कहा कि धारा 77 (3) (डी) केवल तभी लागू होती है जब मकान मालिक और किरायेदार के रिश्ते को स्वीकार किया गया था और अकेले किरायेदारी की प्रकृति विवाद में थी, और इसलिए, एक अधिभोग किरायेदार द्वारा मुकदमा जो अपने मकान मालिक से कब्जा वसूलने के लिए कब्जे से बाहर था, जिस पर वह अधिभोग अधिकारों का दावा करता है, धारा 77 (3) के अंतर्गत नहीं आता है। किरायेदारी अधिनियम, क्योंकि यह एक किरायेदार द्वारा मुकदमा नहीं था। इसी प्रकार सोलोन (सुप्रा) के *श्री राजा दुर्गा सिंह* के मामले में उच्चतम न्यायालय के उनके लॉर्डशिप की आधिकारिक घोषणा में केवल यह कहा गया है कि विधायिका ने केवल उन मुकदमों को नागरिक संहिता के संज्ञान से रोक दिया, जहां पक्षों के बीच कोई विवाद नहीं है कि भूमि पर खेती करने

---

[2] 1969 राजस्व कानून रिपोर्टर 599.

[3] 1970 पी.एल.जे. 656.

[4] 1967 करंट लॉ जर्नल (पीबी एंड हर) 725.

[5] 1962 पी.एल.आर. 837.

[6] 1971 पी.एल.जे. 839.

वाला व्यक्ति या जो भूमि के कब्जे में था, वह किरायेदार था। यह दीवानी मुकदमा राजा दुर्गा सिंह ने अपनी खुदकाश्त भूमि *होने का दावा करने वाली कुछ भूमि पर कब्जे और लाभ कमाने के लिए दायर* किया था । प्रतिवादियों ने राजा दुर्गा सिंह के मुकदमे का विरोध करते हुए दावा किया कि वे पिछली दो या तीन पीढ़ियों से भूमि के अधिभोगी किरायेदार थे। वादी ने यह स्वीकार नहीं किया कि वे कभी भी जमीन पर उसके किरायेदार थे। यह उस संदर्भ में था कि जब प्रतिवादियों ने किरायेदारी अधिनियम की धारा 77 (3) के तहत मुकदमे को प्रतिबंधित करने की दलील को उठाया कि बार को आकर्षित करने के लिए, मुकदमा उप-धारा (3) में वर्णित मामलों में से एक से संबंधित होना चाहिए, और दूसरा मकान मालिक और किरायेदार के रिश्ते के अस्तित्व को पार्टियों द्वारा स्वीकार किया जाना चाहिए, और यदि ऊपर उल्लिखित दो शर्तों में से प्रत्येक संतुष्ट नहीं है, तो वाद को सिविल कोर्ट के संज्ञान से नहीं रोका जाता है। *जसवंत राय और एक अन्य* (सुप्रा) के मामले में विवाद में भूमि मलेरकोटला के नवाब के स्वामित्व में थी। इसका अधिभोग किरायेदार मोहम्मद खलील था। अछरू राम, जसवंत राय और सुशील कुमार इसके *दखिलकार थे।* भगवान दास ने यह जमीन मोहम्मद खलील से लीज पर ली थी। भगवान दास ने बाद में यह घोषणा करने के लिए एक मुकदमा दायर किया कि *डाखिलकर उनसे कोई* बटाई *प्राप्त करने के हकदार* नहीं थे क्योंकि मोहम्मद खलील के मालिक बनने के बाद विवाद में भूमि से उनका कोई लेना-देना नहीं था, और आगे की घोषणा के लिए कि वह दखिलकरों के तहत किरायेदार नहीं थे और इस आशय के राजस्व रिकॉर्ड में प्रविष्टियां गलत थीं। वादी के पक्ष में अधिकार क्षेत्र के सवाल पर जिला न्यायाधीश के फैसले को इस न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा बरकरार रखा गया था क्योंकि वाद में जो स्थिति ली गई थी वह यह थी कि वह *दखिलकरों* का किरायेदार नहीं था और यह उन सवालों में से एक था जिसे मुकदमे में तय किया जाना था।

11. अतिरिक्त जिला न्यायाधीश के फैसले में उल्लिखित सभी पांच मामलों के अध्ययन से यह देखा जा सकता है कि उन मामलों में से प्रत्येक में मकान मालिक और किरायेदार के रिश्ते को शुरू से ही अस्वीकार कर दिया गया था । इनमें से कोई भी निर्णय ऐसे मामले से संबंधित नहीं है जहां पार्टियों के बीच संबंध एक मकान मालिक और किरायेदार का था, जब तक कि राजस्व न्यायालय द्वारा सिविल मुकदमे में बचने की मांग की जाने वाली निष्कासन की डिक्री पारित नहीं की गई थी। यदि वर्तमान वाद के रूप में इस तरह के मुकदमे को इस आधार पर सिविल कोर्ट के अधिकार क्षेत्र से बाहर रखने की मांग की जाती है कि किरायेदारी अधिनियम की धारा 77 (3) के तहत रोक लागू नहीं होती है क्योंकि किरायेदार यह स्थिति लेता है कि उसकी किरायेदारी आक्षेपित डिक्री द्वारा समाप्त हो गई है, धारा 77 (3) का पूरा उद्देश्य कुंठित हो जाएगा। धारा 77 (3) के आवेदन को इस आधार पर केवल तभी बाहर रखा जाता है जब विवाद में संपत्ति के संबंध में पक्षों के बीच मकान मालिक और किरायेदार के संबंध के बारे में कोई वास्तविक विवाद हो। मेहर सिंह, सी. जे. और आर. एस. सरकारिया, जे. (जैसा कि वे तब थे) द्वारा यह माना गया है कि *मकान मालिक द्वारा या किसी तीसरे व्यक्ति द्वारा किसी किरायेदार को गलत तरीके से बेदखल करने के मामले में, किरायेदार मकान मालिक के अधीन भूमि रखना बंद नहीं करता है, और किरायेदार के चरित्र से वंचित नहीं होता है।* वादी प्रतिवादियों का मामला यह है कि वे किरायेदार थे, कि उनके निष्कासन का एक अवैध आदेश पारित किया गया था, और उन्हें इस तरह के अवैध आदेश के तहत बेदखल करने की मांग की गई थी। वादी-प्रतिवादियों की उन दलीलों को उनके अंकित मूल्य पर लेते हुए, मकान मालिक और किरायेदार के रिश्ते को विवादित नहीं कहा जा सकता है। डिवीजन बेंच ने *श्री लक्षबीर* (सुप्रा) के मामले में कहा कि किरायेदार के गलत कब्जे के बावजूद मकान मालिक और किरायेदार का कानूनी संबंध जारी है।

12. इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर और ऊपर उल्लिखित कानून के प्रकाश में, मुझे कोई संदेह नहीं है कि विद्वान अतिरिक्त जिला न्यायाधीश ने इस मामले के स्वीकृत तथ्यों को रखने में एक स्पष्ट त्रुटि की कि धारा 77 (3) वर्तमान मामले पर लागू नहीं होती है क्योंकि मकान मालिक और किरायेदार के संबंध का अस्तित्व पार्टियों के बीच स्वीकार नहीं किया गया है।

13. यह मुझे इस प्रश्न पर ले जाता है कि क्या वर्तमान वाद धारा 77 (3) में उल्लिखित मामलों के दूसरे समूह के खंड (एफ) या खंड (जी) के भीतर आता है। किरायेदारी अधिनियम की धारा (3) की भाषा से स्पष्ट है कि यह प्रावधान केवल ऐसे मुकदमों पर रोक लगाता है जो उस प्रावधान में उल्लिखित मामलों के पहले या दूसरे समूह के तहत किसी भी प्रविष्टियों में उल्लिखित हैं। सोलोन (सुप्रा) के श्री राजा दुर्गा सिंह के मामले में सुप्रीम कोर्ट के लॉर्डशिप की आधिकारिक घोषणा के मद्देनजर यह प्रस्ताव विवाद से परे है । इस मुकदमे की सुनवाई करने के लिए सिविल कोर्ट के अधिकार क्षेत्र को खारिज कर दिया जाएगा यदि वादी का मुकदमा "धारा 45 (किरायेदारी अधिनियम की) के तहत एक किरायेदार द्वारा एक मुकदमा है, जो उसे निष्कासन का नोटिस दिए जाने पर निष्कासन के दायित्व का विरोध करता है"; या यदि किरायेदार का मुकदमा कब्जे या अधिभोग की वसूली या मुआवजे या दोनों के लिए धारा 50 (किरायेदारी अधिनियम) के तहत है।

14. श्री गुप्ता पहले दावा करते हैं कि मामला किरायेदारी अधिनियम की धारा 77 (3) के खंड (जी) द्वारा कवर किया गया है क्योंकि वादी ने स्वीकार किया है कि निष्कासन के लिए एक आदेश पारित किया गया था और कब्जे के लिए वारंट पर बनाई गई रिपोर्ट के अनुसार, वादी को बेदखल कर दिया गया था। वह प्रस्तुत करता है कि इन परिस्थितियों में, कब्जे को जारी रखने के लिए घोषणा का दावा कब्जे की वसूली के लिए एक दावे के बराबर है। मैं इस तर्क से सहमत नहीं हूं। वादी का मुकदमा न तो किरायेदारी अधिनियम की धारा 50 के तहत है, न ही कब्जे या अधिभोग या मुआवजे की वसूली के लिए मुकदमा है। इस फैसले के पहले हिस्से में धारा 50 को पहले ही उद्धृत किया जा चुका है। उस खंड द्वारा केवल दो प्रकार के सूट कवर किए जाते हैं। सबसे पहले, कब्जे की बहाली के लिए मुकदमा जहां किरायेदार को धारा 44 या धारा 45 के तहत एक आदेश के अनुसरण में "डिक्री के निष्पादन के अलावा" या अन्यथा बेदखल कर दिया गया है। वादी जो प्रतिवादी-याचिकाकर्ता के किरायेदार थे, उन्हें या तो विवाद में भूमि से निकाल दिया गया है जैसा कि प्रतिवादी द्वारा दावा किया गया है या बेदखल नहीं किया गया है। यदि उन्हें बेदखल नहीं किया गया है, तो धारा 50 की धारा (ए) का मामले में कोई आवेदन नहीं है। यदि उन्हें प्रतिवादी-याचिकाकर्ता द्वारा किए गए दावे के अनुसार बेदखल कर दिया गया है, तो उन्हें अधिनियम की धारा 45 के तहत निष्कासन के आदेश के अनुपालन में बेदखल कर दिया गया है। किसी भी स्थिति में उनका मुकदमा धारा 50 के खंड (ए) के दायरे में नहीं आ सकता है, दूसरी बात यह है कि धारा 50 के खंड (बी) के तहत मुकदमा एक किरायेदार द्वारा दायर किया जा सकता है, जिसने धारा 45 के तहत मुकदमा दायर नहीं किया है, उस धारा के तहत एक आदेश के अनुसरण में बाहर निकाल दिया गया है, जो अपने दायित्व से इनकार करता है। इस तरह का मुकदमा एक वर्ष के भीतर राजस्व न्यायालय में दायर किया जा सकता है। एक वर्ष की समाप्ति के बाद सिविल कोर्ट में इस तरह के मुकदमे दायर किए जाने की संभावना को बाहर करने के लिए, धारा 77 (3) के खंड (जी) द्वारा ऐसे सिविल मुकदमे की संस्था के लिए रोक बनाई गई है। तथापि, खंड (छ) ऐसी स्थिति से उत्पन्न होने वाले सभी प्रकार के मुकदमों पर रोक नहीं लगाता है। इस संबंध में प्रतिबंधित एकमात्र मुकदमे वे हैं जिनमें बेदखली स्वीकार की गई है और दावा पूर्ववर्ती किरायेदारी भूमि या अधिभोग किरायेदारी के कब्जे या मुआवजे या दोनों के लिए है। इस मामले में, वादी-प्रतिवादियों ने न केवल कब्जे की वसूली का दावा किया है, बल्कि दूसरी ओर यह भी कहा है कि उन्हें कभी बेदखल नहीं किया गया है और परिणामस्वरूप उन्होंने इस आशय की घोषणा का दावा किया है कि वे भूमि के कब्जे में बने हुए हैं। इस तरह का मुकदमा स्पष्ट रूप से खंड (जी) की शरारत के भीतर नहीं आता है, और इसे सिविल कोर्ट के अधिकार क्षेत्र से बाहर नहीं रखा गया है। इसलिए, मैं प्रतिवादी-याचिकाकर्ता के विद्वान वकील से सहमत होने में असमर्थ हूं कि यह मुकदमा किरायेदारी अधिनियम की धारा 77 (3) के खंड (जी) के तहत निषिद्ध है।

15. किरायेदारी अधिनियम की धारा 77 (3) के खंड (एफ) के तहत मुकदमे को कवर करने के लिए सबसे गंभीर तर्क दिए गए हैं। हालांकि, मुझे यह कहने में कोई कठिनाई नहीं लगती है कि यह धारा 45 के तहत निष्कासन के दायित्व को चुनौती देने के लिए मुकदमा नहीं है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि वादी-प्रतिवादियों को निष्कासन का नोटिस दिया गया था, लेकिन एकमात्र मुकदमा जो वे नोटिस की सेवा की तारीख से दो महीने के भीतर धारा 45 के तहत दायर कर सकते थे, वह उस धारा की उप-धारा (3) के तहत निष्कासन के लिए उनके दायित्व को चुनौती देने वाला मुकदमा होगा। खंड (एफ) द्वारा बनाए गए बार का उद्देश्य यह है कि एक किरायेदार दो महीने की अवधि की समाप्ति के बाद राजस्व न्यायालय में जाने के बजाय दो महीने की अवधि के भीतर राहत का दावा करने के लिए सिविल कोर्ट में नहीं आ सकता है, जिसे वह दो महीने की अवधि के भीतर किरायेदारी अधिनियम की धारा 45 (3) के तहत दावा कर सकता था। वाद में वादी-प्रतिवादियों द्वारा दावा की गई राहत का कोई भी हिस्सा, जिससे वर्तमान कार्यवाही उत्पन्न हुई है, धारा 45 की उप-धारा (3) के दायरे में नहीं आती है। वादी द्वारा दावा की गई पहली घोषणा कि वे उपज के किराए के भुगतान पर किरायेदारों के रूप में पचास साल या उससे अधिक समय से भूमि पर खेती कर रहे हैं, धारा 45 के तहत उन्हें बेदखल करने के लिए प्रतिवादी याचिकाकर्ता के दावे का बचाव नहीं होगा। न ही कर सकते थे। वे किरायेदारी अधिनियम की धारा 45 के तहत एक मुकदमे में दावा करते हैं कि उनके वाद में उल्लिखित आधार पर उन्हें मालिकाना अधिकार प्राप्त हुए थे। वादी द्वारा दावा की गई तीसरी घोषणा कि उन्हें वास्तव में सहायक कलेक्टर द्वारा पारित निष्कासन के आदेश के अनुसरण में कभी भी बेदखल या बेदखल नहीं किया गया था, धारा 45 की उपधारा (3) द्वारा परिकल्पित मुकदमे की विषय-वस्तु नहीं बन सकती है। Nया वादी धारा 45 (3) के तहत मुकदमे में प्रतिवादी-याचिकाकर्ता को उस आदेश के अनुसरण में उन्हें बाहर निकालने से रोकने के लिए एक निषेधाज्ञा का दावा कर सकता है जो तब तक पारित नहीं किया गया था। धारा 45 (3) के तहत कोई मुकदमा नहीं है, जब धारा 45 (5) के तहत निष्कासन का आदेश पहले ही पारित किया जा चुका है। इसलिए, वादी-प्रतिवादियों का वर्तमान मुकदमा धारा 77 (3) के खंड (एफ) के भीतर नहीं आता है। इसलिए, उस धारा के तहत मुकदमे के खारिज होने का दावा भी विफल हो जाता है।

16. वादी प्रतिवादियों के वकील श्री आदर्श कुमार गोयल, जिन्होंने इस मामले में पूरी तरह से बहस की है, ने सही ढंग से बताया है कि यह मुकदमा पेप्सू किरायेदारी और कृषि भूमि अधिनियम (1955 का 13) की धारा 39/47 (इसके बाद पेप्सू अधिनियम कहा जाता है) के तहत भी निषिद्ध नहीं है। पेप्सू अधिनियम की धारा 39 में केवल यह प्रावधान है कि विहित प्राधिकारी या सहायक कलेक्टर के किसी निर्णय या आदेश से व्यथित कोई भी व्यक्ति विनिदष्ट समय के भीतर ऐसे आदेश के विरुद्ध कलेक्टर के समक्ष अपील कर सकता है और कलेक्टर के किसी निर्णय या आदेश से व्यथित कोई भी व्यक्ति निर्धारित समय के भीतर और निर्धारित सीमाओं के अध्यधीन आयुक्त के समक्ष इसके विरुद्ध अपील करना चाहेगा। धारा 39 की उप-धारा (3) वित्तीय आयुक्त को पेप्सू अधिनियम के तहत निपटाए गए सभी मामलों के संबंध में निर्धारित प्राधिकारी या सहायक कलेक्टर या कलेक्टर या आयुक्त की कार्यवाही को बुलाने, जांचने और संशोधित करने की शक्ति सुरक्षित रखती है। उस अधिनियम की धारा 47 जो सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र पर रोक लगाती है, निम्नलिखित शब्दों में है: —

17. किसी भी सिविल न्यायालय को ऐसे किसी भी मामले को निपटाने, निर्णय लेने या निपटाने का अधिकार नहीं होगा जो इस अधिनियम के तहत वित्तीय आयुक्त, कलेक्टर या निर्धारित प्राधिकारी द्वारा निपटाया जाना आवश्यक है।.

    (2) वित्तीय आयुक्त, आयुक्त, कलेक्टर या इस अधिनियम के तहत या उसके अनुसरण में बनाए गए विहित प्राधिकारी का कोई आदेश किसी न्यायालय में विचाराधीन नहीं किया जाएगा।.''

18. वित्तीय आयुक्त, आयुक्त, कलेक्टर या पेप्सू अधिनियम के तहत पारित निर्धारित प्राधिकारी के किसी भी आदेश पर वादी-प्रतिवादियों द्वारा सवाल नहीं उठाया गया है। वास्तव में, ऐसा कोई आदेश पारित नहीं किया गया है जिसके लिए पक्षकारों की दलीलों में कोई संदर्भ दिया गया हो या जो वर्तमान मुकदमे के निर्णय के लिए प्रासंगिक हो। इसलिए, धारा 47 की उप-धारा (2) इस मुकदमे पर रोक नहीं लगाती है। यह तय करने के लिए कि उप-धारा (1) वाद पर रोक लगाती है या नहीं, हमें यह देखना होगा कि वे कौन से मामले हैं जिन्हें पेप्सू अधिनियम के तहत उस अधिनियम में नामित किसी भी प्राधिकरण द्वारा निपटाया जा सकता है, निर्णय लिया जा सकता है या निपटाया जा सकता है। यह ध्यान दिया जाएगा कि जहां तक मकान मालिकों और किरायेदारों के बीच कार्यवाही का संबंध है, पेप्सू अधिनियम की धारा 22 किरायेदारों द्वारा मालिकाना अधिकारों के अधिग्रहण से संबंधित है, धारा 23 मालिकाना अधिकारों के अधिग्रहण के लिए मुआवजे के निर्धारण से संबंधित है, धारा 24 किरायेदार द्वारा मालिकाना अधिकारों को प्राप्त करने के अपने इरादे के परित्याग से संबंधित है। और धारा 25 मालिकाना अधिकारों को प्राप्त करने के अधिकार को जब्त करने के साथ। पार्टियों के बीच ऐसा कोई विवाद वर्तमान मुकदमे की विषय-वस्तु नहीं है। प्रतिवादी-याचिकाकर्ता के विद्वान वकील *ने श्री लक्षबीर के मामले* (सुप्रा) में इस न्यायालय की खंडपीठ की टिप्पणियों का उल्लेख करते हुए कहा कि पेप्सू अधिनियम की धारा 2 (जो "किरायेदार" शब्द को परिभाषित करती है) की दूसरी आवश्यकता यह है कि एक किरायेदार धारा 7-ए की उप-धारा (1) के खंड (ए) या खंड (बी) के तहत या धारा 7-ए के खंड (ए) और (बी) के तहत निष्कासन के लिए उत्तरदायी नहीं है। पेप्सू अधिनियम। पेप्सू अधिनियम के तहत किरायेदार की जो भी परिभाषा हो, यह निर्धारित करने के लिए प्रासंगिक नहीं है कि उस अधिनियम की धारा 47 इस मुकदमे को रोकती है या नहीं। जब तक मुकदमा धारा 47 की उप-धारा (1) या उप-धारा (2) के भीतर नहीं आता है, तब तक इसे पेप्सू अधिनियम के तहत प्रतिबंधित नहीं ठहराया जा सकता है। मैंने ऊपर कहा है कि वादी-प्रतिवादियों का मुकदमा धारा 47 की किसी भी उप-धारा के भीतर नहीं आता है। इसलिए, इस संबंध में सिविल न्यायालय के क्षेत्राधिकार पर आपत्ति भी विफल हो जाती है।

19. इस मामले में पक्षकारों के वकील द्वारा कोई अन्य बिंदु पर बहस नहीं की गई थी। पहले से दर्ज कारणों के लिए, विद्वान अतिरिक्त जिला न्यायाधीश के आदेश को बरकरार रखा जाता है, मुद्दा संख्या 4 वादी-प्रतिवादियों के पक्ष में तय किया जाता है और यह माना जाता है कि वादी-उत्तरदाताओं के मुकदमे की सुनवाई करने के लिए ट्रायल कोर्ट का अधिकार क्षेत्र कानून के किसी भी प्रावधान द्वारा प्रतिबंधित नहीं है, और पुनरीक्षण याचिका तदनुसार खारिज कर दी जाती है। चूंकि मुकदमे को ट्रायल कोर्ट द्वारा पहले ही ट्रायल कोर्ट द्वारा ट्रायल और खारिज कर दिया गया है, और इस बीच वादी-प्रतिवादियों द्वारा ट्रायल कोर्ट डिक्री के खिलाफ वरीयता प्राप्त पहली अपील में भी ट्रायल कोर्ट के फैसले को बरकरार रखा गया है, इसलिए इस संबंध में आगे कोई निर्देश दिए जाने का कोई सवाल ही नहीं है। मामले की परिस्थितियों में पार्टियों को इस याचिका में अपनी लागत सुनने के लिए छोड़ दिया जाता है।

एन.के.एस.

अस्वीकरण: स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय, वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके, और किसी अन्य उद्देश्य के लिया इसका उपयोग नहीं किया जा सकेगा। सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा।

जिज्ञासा शर्मा

प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी